Vidya (2020) Vol : 15(1)

Review Paper

ISSN: 2321-1520

भारतीय संतो के भक्तियोग विषयक विचार

चौहान तमन्ना एम.

पीएच.डी. सोधछात्रा,
तत्त्वज्ञान विभाग,
गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

Received Date: 12-11-2019

Published Date: 15-03-2020

सारांश

सन्तो के अनुसार भक्ति का मुख्य उद्देश्य चित्त को बाह्य वृत्तियों से हटाकर भगवान की सेवा में केन्द्रित करना है । उन्होंने मन को बन्धन तथा मोक्ष का कारण बताया है । जब मन-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि विषय-विकारो में आसक्त रहता है तो वह बन्धन का कारण बन जाता है और जब मन इन विकारों को त्यागकर दुःख-सुख की अवस्था से ऊपर उठकर भगवान में अनुरक्त होता है तो वह भक्ति के रुप में परिणत होकर मोक्ष का साधन बन जाता है । उनके अनुसार योग, जप, तप, ज्ञान आदि भक्ति के लिए सोपान है ।

सन्तो ने अपने काव्य में नारदी भक्ति, फकीरी भक्ति, प्रेम भक्ति, भाव भक्ति, सहजा भक्ति आदि पर प्रकाश डाला है । उनका सारा काव्य भक्ति की भावना से ओत-प्रोत है । सन्त कवियों ने अपने पदों, साखियों एवं बानियों में बार-बार भक्ति के महात्म्य का गान किया है ।

सन्तो की साधना वस्तुतः भक्ति, प्रेम और रहस्यानुभूति की साधना है । भक्ति ईश्वर प्राप्ति का सरलतम साधन है ।

प्रस्तावना

भक्ति और योग दोनों संस्कृत के शब्द है । योग का अर्थ है - 'जोड़ना' या 'मिलन' तथा भक्ति का अर्थ है -

'दिव्य प्रेम, ब्रह्म के साथ प्रेम, परम सत्ता से प्रेम' ।

भक्ति शब्द 'भज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'सेवा' । किन्तु वास्तव में भक्ति उसे कहते हैं, जो 'ईश्वर के चरणों में पूर्णरूप से आत्मसमर्पण करता है तथा ईश्वर में पूर्णरूप से अनुरक्त हो जाता हो' ।

श्री भगवानुवाच

मय्यावैश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्तमा मताः ।। १२-२ ।।

भगवद्गीता के अनुसार भक्ति का अर्थ है, "जो व्यक्ति अपना मन सिर्फ मुजमें लगाता है और में ही उनके विचारो में रहता हूँ, जो मुजे प्रेम और समर्पण के साथ भजते है, और मुज पर पूर्ण विश्वास रखते है वो उत्तम श्रेणी के होते है ।"

भक्तियोग की विभावना :

भक्तियोग की विभावना स्पष्ट करने से पहले ज्ञान, कर्म का भक्ति से क्या संबंध है, वह जानना जरुरी है । कर्म, ज्ञान और भक्ति-तीनों साधना की अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रणालियाँ है । ये स्वतंत्र भी है और परस्पर एक-दूसरे के पूरक भी है । कर्म में इन्द्रियों की प्रधानता रहती है, तथा ज्ञान में बुद्धि की एवं भक्ति में श्रद्धा की प्रधानता रहती है । इनके अतिरिक्त योग भी एक महत्वपूर्ण प्रणाली है । स्वामी विवेकानंद के अनुसार, "एक पक्षी को उड़ने के लिए तीन अंगो की आवश्यकता होती है : दो पंख और एक पतवार स्वरूप पूँछ । ज्ञान और भक्ति मानों दो पंख है और योग पूँछ, जो सामंजस्य बनाए रखती है ।" (सिंह, १९७७, १६९)

भक्तियोग वह है, जिसमें भगवान का आश्रय लिया जाए, परमात्मा के गुणों की प्रीति, कीर्तन, स्तुति एवं अपने को सर्वथा उसके अधीन मानकर सारे कर्म और उनके फल भगवान को अर्पण करना, भगवान के प्रत्येक विधान में खुश रहना तथा भगवान के नाम का निरन्तर जप करना । जो व्यक्ति स्वार्थ, लालसा या भय के कारण नहीं किन्तु मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण परमात्मा की और उन्मुख होता है वही व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार तथा ब्रह्मसाक्षात्कार करता है ।

नारद ने भक्ति के स्वरुप का निर्वचन करते हुए कहा है कि भगवान के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है । साधक इस अमृतरुपा भक्ति को प्राप्त कर पूर्णकाम, तृप्त, अमर तथा सिद्ध हो जाता है । इस परम प्रेम से किसी काम्य वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जब तक उपासक के हृदय में सांसारिक वासनाएँ घर किए रहती है, तब तक इस प्रेम का उदय नहीं होता । इस भक्ति या प्रेम को पाकर प्रेमी को और कुछ भी पाने की आकांक्षा नहीं रहेती । वह सुख-दुःख, ईर्ष्या-द्वैष आदि सभी द्वन्द्वों से निवृत्त हो जाता है । (सिंह, १९७७ : १७०)

भक्तियोग में इसी भक्ति को साधना का साधन स्वीकार किया जाता है । विवेकानंद के अनुसार, "निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज को ही भक्तियोग कहतें ऊ। इस खोज का आरंभ, मध्य और अंत प्रेम में होता है । ईश्वर के प्रति एक क्षण की भी प्रेमोन्मतता हमारे लिए शाश्वत मुक्ति देनेवाली होती है ।" वस्तुतः भक्तियोग उच्चतर प्रेम का विज्ञान का विज्ञान है । इसमें प्रेम का भाव ही मुख्य है । विनोबा कहते है कि, "भावपूर्वक ईश्वर के साथ जुड जाने का अर्थ है भक्तियोग ।" जीवन में अनेक भाव ऐसे होते है, जो मनुष्य को निम्नाभिमुख बना देते है । भक्तियोग में उसके स्वरुप को सर्वथा बदल देता है ।

विवेकानंद के अनुसार "भक्तियोग का रहस्य यह है कि मनुष्य के हृदय में जितने प्रकार की वासनाएँ और भाव है, उनमें से कोई भी स्वरूपतः खराब नहीं है । उन्हें धीरे-धीरे अपने वश में लाकर उनकी गति क्रमशः उच्च से उच्चतर दिशा में फेरनी होगी । और यह तब तक करना होगा, जब तक कि वे परमोच्च दशा को प्राप्त न हो जाएँ । उनकी सर्वोच्च गति है भगवान और उनकी शेष सब गतियाँ निम्नाभिमुखी है ।"

भक्ति के प्रकार

भक्ति अनेक प्रकार की मानी गई है । श्रीमद् भागवत में नवधा भक्ति का विवेचन इस प्रकार है - (१) श्रवण (२) कीर्तन (३) नाम-स्मरण (४) पादसेवन (५) प्रभुवंदन (६) अर्चन (७) दास्य (८) सख्य और (९) आत्मनिवेदन । इसे भक्ति का नौ रुप माना जाता है । यह नवधा भक्ति साधनरुपा है । साध्यरुपा भक्ति को प्रेमलक्षण या प्रेमाभक्ति कहा जाता है । नारद भक्तिसूत्र में भक्ति नामक भाव-विशेष की एकादश 'आसक्तियाँ' मानी गई है, जो इस प्रकार है - (१) गुणमाहात्म्यासक्ति (२) रुपासक्ति (३) पूजासक्ति (४) स्मरणासक्ति (५) दास्यासक्ति (६) सख्यासक्ति (७) कांतासक्ति (८) वात्सल्यासक्ति (९) आत्मनिवेदनासक्ति (१०) तन्मयतासक्ति (११) परमविरहासक्ति ।

भक्ति साधना में अष्ट विकार, ईश्वर के प्रति अविश्वास, मेष, कूसंगति इत्यादि को बाधक माना गया है । भक्ति में माया और नारी को पुरुष की भक्ति, मुक्ति और ज्ञान तीनो को नष्ट करनेवाला कहा है । भक्तियोग के साधक को आध्यात्मिक चर्चा, सत्संग, ईश्वर कीर्तन इत्यादि में नियमित रुप में भाग लेना चाहिए । और उपरोक्त अष्ट विकारो - काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, कपट, आशा और तृष्णा का त्याग करना चाहिए । योग साधना में संलिप्त रहते हुए ईश्वर भजन में ही अनुरुक्त रहना चाहिए । अतिशय दुराचारी भक्ति भी यदि अनन्य भाव से ईश्वर की शरण में आ जाता है तो वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और वह परम शान्ति की प्राप्ति करता है ।

संतो ने अपने काव्य में नारदी भक्ति, फकीरी भक्ति, प्रेम भक्ति, सहजा भक्ति आदि पर प्रकाश डाला है । उनका सारा काव्य भक्ति की भावना से ओत-प्रोत है । संत कवियो ने अपने पदों, साखिया एवं बानियों में भक्ति के महात्म्य की बात की है । (पटियाल, २००५ : ११५)

सुन्दरदास ने भक्ति के तीन अंग दिए है - (१) कनिष्ठा (२) मध्यमा और (३) उत्तमा । उन्होंने नवधा भक्ति के

नौ अंगो का भी उल्लेख्र किया है । जिस प्रकार मछली को पानी की, शिशु को दूध की, बीमार व्यक्ति को दवाई की, चातक को स्वाति बूँद की, चकोर को चन्द्र की, सर्प को चन्दन की, निर्धन को धन की तथा कामिनी को पति की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भक्त भी परमात्मा से मिलने के लिए आतुर रहता है ।

भक्ति उद्देश्य

संतो के अनुसार भक्ति का मुख्य्र उद्देश्य यह है कि मन को बाह्य वृत्तियों से हटाकर भगवान की सेवा में केन्द्रित करना है । उन्होंने मन को बन्धन तथा मोक्ष का कारण माना है । संतो का मानना है कि जब मन यदि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि विषय-विकारो में आसक्त हो जाता है तब वह बन्धन का कारण बन जाता है । पर जब मन इन विकारों को त्याग देता है और वह सुख्र-दुःख्र की अवस्था से ऊपर उठकर भगवान में तल्लीन हो जाता है, तब वह भक्ति के रुप में परिणत होकर मोक्ष का साधन बन जाता है । उनके अनुसार योग, जप, तप, ज्ञान आदि भक्ति के सोपान है ।

संतो के भक्तियोग विषयक विचार

कबीर के अनुसार भगवान की भक्ति से व्यक्ति का मन इधर-उधर विषय वासनाओं में भटकता नहीं है, किन्तु वह नाम स्मरण से यह जीवन कवन के समान बहुमूल्य हो जाता है । व्यक्ति भगवान की कृपा से ही भक्ति की और उन्मुख्र हो जाता है और उसे ज्ञान हो जाने पर सारी शंकाओ दूर हो जाती है । कबीर के अनुसार माया और विषय-वासना भक्ति का बाधक है । तथा प्रेम भक्ति का मूलाधार है । इस प्रकार कबीर ने प्रेम और विरह, परचा, सूरातन, पवित्रता, उपजणि आदि अंगो में भक्ति का अत्यंत विस्तारपूर्वक उल्लेख्र किया है । उनका मानना है कि हरिभक्ति के बिना मुक्ति असम्भव है । (मेहरा, २०१० : ३८)

चरनदास के अनुसार भक्ति का सोपान शरीर है । उन्होंने कहा है कि "गोमती का पुण्य अच्छे कर्मो से मिल जाता है, शरीर से अधर्मरुपी मैल धो लो, क्षमा में नर्वदा का पुण्य जानो, शीलरुपी सरोवर में स्नान करो, शरीर से कामाग्नि की तपन बुझा लो, क्रोध को पूजा से दूर करो । सत्य में यमुना, संतोष में सरस्वती, दैर्य में गंगा का पुण्य जानों, जूठ मत बोलो, निर्लोभी बनो और दयारुपी तीर्थ से बुरे कामों का नाश करो" (वियोगी, १९५८ : ४४५)

संत मलूकदास मानते है कि, भक्ति की भावना एवं उसका सम्बन्ध जब प्रगाढावस्था को पहूँच जाता है तब साधक प्रेम साधना में अनुरक्त होकर सर्वत्र परमात्मा की प्रेममयी सत्ता का दर्शन करता है ।

दादु दयाल के अनुसार भक्ति साधना में ब्रह्मपुर, शिवपुर, वैकुण्ठपुर, इन्द्रासन, मोक्ष, ऋद्धि-सिद्धि व्यर्थ है । भगवान दर्शनों के लिए तन-मन को भुलाकर, स्वर्ग-नरक को लुटाकर, आतुर हो जाता है ।

सहजोबाई के अनुसार गुरु कृपा से ही भक्ति का फल मिलता है । वह मानता है कि यज्ञ, दान, तीर्थाटन, योग आदि व्यर्थ है । उनका मानना है कि निष्काम भाव से कार्य करना चाहिए और मन को हरि में निमग्न करके हर समय

नाम-स्मरण करना चाहिए ।

महाराज हरिदास की भक्ति में प्राणायाम, सूर्य-चन्द्र को सुषुम्ना में स्थित करना, गगनमण्डल में नाद का सुनना, बकनाल का रसपान करना आदि का उल्लेख किया है ।

नामदेव ने भक्ति में नाम साधना पर अधिक बल दिया है तथा उन्होंने नाम स्मरण को ही भक्ति का सर्वश्रेष्ठ सोपान माना है । उनका मानना है कि सभी भ्रमों का नाश नाम-स्मरण से हो जाता है ।

गुरु नानक ने रागात्मिका भक्ति पर अधिक बल दिया है । सद्गुरु, नाम, सत्संगति, आत्मसमर्पण, कीर्तन, स्मरण, दृढ विश्वास, परमात्मा का भय आदि उनकी भक्ति के मुख्य उपकारक है । गुरुओं द्वारा निरुपित सभी पद - कर्ममार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग भक्ति ही धारा से संचित है । उनका मानना है कि कर्मयोग को निष्काम कर्मयोग, ज्ञान को ब्रह्म ज्ञान तथा योग को सहज योग में भक्ति ही परिणत करती है ।

रैदास ने मानसिक भक्ति पर प्रकाश डाला है । उनके अनुसार भक्ति में पूजा-पाठ, दान, नवैद्या आदि भ्रम मात्र है । वह कहते है कि व्यक्ति को हर वक्त मानसिक रुप से प्रभु स्मरण में निमग्न रहना चाहिए ।

पीपाजी के हृदय में बचपन से ही हरिभक्ति मौजुद थी । उन्होंने कबीर के मत 'जो पिण्ड में है सो ब्रह्माण्ड में है' को प्रतिपादित किया है । वह कहते है कि, मानव के शरीर के अन्दर ही इष्टदेव, मन्दिर और समस्त चर जीव है । पूजा की सारी सामग्रियो-फल-फूल, धूप-दीप, नैवेध हमारे शरीर में ही विद्यमान है ।

इस प्रकार संतो कीसाधना वस्तुतः भक्ति, प्रेम और रहस्यानुभूति की साधना है । भक्ति ही ईश्वर की प्राप्ति का सरलतम साधन है । (पटियाल, २००५ : ११७)

निष्कर्ष :

कर्म, ज्ञान, भक्ति एवं योग-सभी का ध्येय निस्संदिग्ध रुप से प्रायः एक ही है । इनमें भिन्नता साधनो को लेकर है । विभिन्न संप्रदाय में इनमें से किसी एक को प्रदान मानते है और शेष को गौण मानते है ।

भक्तियोग में भक्ति ही मुख्य होती है । भक्ति अनन्य प्रेमरुपा है । ईश्वर की प्राप्ति के लिए यह सरलतम साधन है । गीता के नवे अध्याय में भगवान ने अपनी पूजा को अत्यंत सुलभ बताया है । उन्होंने कहा है कि, जो भी भक्त पत्र, पुष्प, जल और फल श्रद्धापूर्वक अर्पित करेगा, वो उसे सहर्ष स्वीकारेंगे । संतो सामान्यतः वैधी भक्ति के पक्षधर नहीं थे । वे भक्ति के बाह्याचार के विरोधी थे । इसलिए संतो को ऐसा कोई भी आचरण पसंद नहीं था, जिससे भक्ति प्रदर्शन की वस्तु बन जाए । इसी कारण उन्होंने जप, तप, पूजा-पाठ, मंदिर, तीर्थ आदि की महत्ता का अस्वीकार किया था । उनके लिए भक्ति अंतःकरण की वस्तु थी । इसलिए, वे हृदय में स्मरण, गुणानुवाद या ध्यान को अधिक महत्व देते थे । वे सर्व अधिक भक्ति में समर्पण को समर्थन करते थे । उनका उद्देश्य अनन्य भाव से भगवान

की शरण में जाना है । इसलिए वे कर्मयोग इत्यादि का बहिष्कार करके भक्ति का स्वीकार करते थे ।

संदर्भसूचि

१) पटियाल रविकुमार (२००५) हिन्दी संत काव्य में योगतत्त्व, दिल्ली : संजय प्रकाशन, प्रथम संस्करण ।

२) सिंह रामेश्वरप्रसाद (१९७७) संत काव्य में योग का स्वरूप, पटना : अनुपम प्रकाशन, प्रथम संस्करण ।

३) भगवद्गीता

४) गुप्त रामकुमार (२०१२) गुजरात का हिन्दी संत साहित्य, हरियाणा, शान्ति प्रकाशन, प्रथम संस्करण ।

५) मेहरा दिलीप के (२०१०) मध्यकालीन हिन्दी काव्य, कानपुर : ज्ञान प्रकाशन, प्रथण संस्करण ।

६) वियोगी हरि (१९५८), संत-सुधा-सार, दिल्ली-मार्तराड उपाध्याय, प्रथम संस्करण ।

❑